ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 47-49
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

साहित्य और मानवीय संवेदना

रंजना यादव
शोध अध्येत्री– हिन्दी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ0प्र0), भारत

Received-08.07.2023, Revised-14.07.2023, Accepted-20.07.2023 E-mail: akyadavballia@gmail.com

सारांशः ***साहित्य मानव जीवन की विराट आकांक्षाओं, उसके बहुरंगी स्वपनों तथा कोमल संवेदनाओं के सापेक्ष सामाजिक बंधनों, आर्थिक वैषम्य तथा बहुस्तरीय वर्गीकरण से टकराहटों व उसके टूटन तथा संघर्ष और उस पर विजय का न केवल वृत्तचित्र है, बल्कि वह मानवीय संवेदना का वाहक है। रचनाकार जिस भी भाव–वस्तु तथा विचार से उद्वेलित होकर साहित्य सर्जना करता है। उसका प्रभाव प्रथमतः उसकी संवेदना पर ही पड़ता है तथा पाठक या श्रोता उस कृति विशेष से अपनी संवेदनात्मक अनुभूतियों के आधार पर ही जुड़ता है। कह सकते हैं कि रचना, रचनाकार और पाठक के एकाकार का प्रथम आधार संवेदना ही है।***

कुंजीभूत शब्द– विराट आकांक्षाओं, बहुरंगी स्वपनों, कोमल संवेदनाओं, सामाजिक बंधनों, आर्थिक वैषम्य, बहुस्तरीय वर्गीकरण ।

अभिव्यक्ति का आधार या माध्यम तो ज्ञान भी हो सकता है, परन्तु साहित्य के साथ सम्प्रेषण का प्रश्न भी होता है, क्योंकि साहित्य में गोचर के साथ अगोचर की प्रस्तुति का दायित्व भी होता है, जो कि संवेदना के स्तर पर ही सम्भव हो पाता है। साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है और मनुष्य का जीवन सतह पर घटित होती घटना नहीं है। 'साहित्य समाज का दर्पण' भी इसलिए माना जाता है कि इसका प्रभाव मनुष्य की संवेदनाओं पर गहरे पड़ता है जिससे की अतीत की परिस्थितियों के आधार पर वर्तमान तथा भवितव्य के लिए तैयार हुआ जा सके। साहित्य मार्गदर्शक की भूमिका में चेतना के स्तर पर बदलाव लाने के कारण ही होता है। कला की प्रत्येक विद्या अपनी रचनात्मकता में किसी भी बुराई या विषमता के सापेक्ष मानवीय चेतना में परिवर्तन का माध्यम है। 'चित्रा मुद्गल' का कथन द्रष्टव्य है "रचनात्मक साहित्य किसी समस्या का तत्काल निदान नहीं, किन्तु आमजन की मानसिकता बन गए दुर्गणों की गहरी जड़ों में वह लगातार मट्ठा उड़ेलकर आत्मविश्लेषण के लिए प्रेरित ही नहीं करता, उन अदृश्य कारणों की पड़ताल के लिए बाध्य करता है जो उनकी चेतना से उनका सम्पर्क नहीं होने देते।"[1] कह सकते हैं कि साहित्य का सरोकार संवेदना के स्तर पर होता है।

'संवेदना' एक मनोवैज्ञानिक टर्म है अतः इसके स्वरूप तथा प्रकृति को समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों के मत का उल्लेख समीचीन होगा। वस्तुतः मनोवैज्ञानिकों ने संवेदना को इन्द्रियानुभव ही माना है, परन्तु साहित्य में इसका सरोकार इससे अलग स्तर पर होता है। सर्वप्रथम कुछ प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक की परिभाषाओं को समझ लेते हैं। 'मालती सारस्वत' संवेदना को पारिभाषित करते हुए कहती हैं कि "मानव शिशु, जन्म के बाद अपने बाह्य जगत के वातावरण का ज्ञान धीरे–धीरे प्राप्त करता है। उसके वातावरण से परिचय प्राप्त करने का प्रथम आधार संवेदना है। संवेदना की अभिव्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होती है।"[2] मानविकी अध्ययन के अनुशासन मनोविज्ञान में संवेदना को ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्राप्त ज्ञान के रूप में पारिभाषित किया जाता है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री 'मान्टेसरी' ने भी संवेदना को 'ज्ञान का द्वार' माना है। संवेदना के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कुछ अन्य परिभाषाएँ द्रष्टव्य हैं –

एस0 माथुर –"संवेदना ज्ञानेन्द्रियों की प्रतिक्रिया है, जो उत्तेजित होने पर मस्तिष्क और नाड़ी मण्डल के केन्द्र में स्नायुविक धाराएं भेजती हैं। इस प्रकार मस्तिष्क का प्रथम प्रत्युत्तर ही संवेदना है।"[3]

"A Sensation is an act of the sense organ which, stimulated sends nerve currents to the sensory centers of the brain and the first response of the brain is a sensation"

क्रुज – "उत्तेजना के प्रति जीव की प्रथम प्रतिक्रिया ही संवेदना है।"[4]

"Sensation refer the initial response of the organism to a stimulus"

जेम्स – "संवेदना ज्ञान के मार्ग में पहली वस्तुएँ है।"[5]

"Sensations are first things in the way of consciousness"

उपर्युक्त मनोवैज्ञानिकों की परिभाषाओं के आधार पर हम समझ सकते हैं कि संवेदना का सम्बन्ध हमारी ज्ञानेन्द्रियों से है। वातावरण से हमारे (मानव के) सम्बन्ध का आधार ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान है, अर्थात् संवेदना है। यह तो रही संवेदना की सैद्धान्तिकी, परन्तु व्यावहारिक रूप में कई मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि मानवों में शुद्ध संवेदना आजीवन नहीं हो सकती। यह केवल शिशु में ही होता है, क्योंकि ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान में क्रमशः पूर्वानुभव से अर्थ ग्रहण करने की योग्यता का विकास भी मनुष्य का स्वाभाविक गुण है, उसी आधार पर कह सकते हैं कि मानवीय संवेदनाओं का स्तर जैविक संवेदनाओं से अलग स्तर की होती है। मनोवैज्ञानिकों की परिभाषाओं के आलोक में कह सकते हैं कि वस्तु से इन्द्रियों के सम्पर्क से घटित होने वाली प्रक्रिया जिसमें नाड़ी–तंतुओं में प्रतिक्रिया होती है और मस्तिष्क में एक विशेष उत्तेजना के द्वारा वस्तु या परिस्थिति का बोध होता है, उसी प्रक्रिया की संज्ञा संवेदना है परन्तु मानव के रूप में हम वस्तु बोध के साथ से ही उसका भाव बोध भी ग्रहण करते हैं अतः मानवीय संवेदना का स्तर निश्चित तौर पर इससे उच्च स्तर की संवेदना होती है, जिसे साहित्य में सम्प्रेषित किया जाता है।

जैसा कि स्पष्ट है, मनोविज्ञान में संवेदना इन्द्रियानुभव का पर्याय है और साहित्य में संवेदना केवल इन्द्रियानुभव नहीं मानी जाती। साहित्य में अभिव्यक्त संवेदना इससे भिन्न स्तर की संवेदना है क्योंकि इसमें विचार, भाव, अनुभूति आदि का बोध एक साथ अन्तर्गथित होता है। 'डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद' के शब्दों में कहे तो "साहित्य में जब हम संवेदना की बात करते हैं तो उसका अर्थ है, वह वस्तु, वह भाव, वस्तु जिसे कवि या लेखक ने जीवन और जगत् से ग्रहण किया है तथा जिसका वह अपनी रचना के माध्यम से संप्रेषण

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

रहा है। भाव–वस्तु में सिर्फ भावना का ही नहीं विचारों का भी योग रहता है।''[6]

इस प्रकार लेखक की सभी अनुभूतियाँ संवेदना के अन्तर्गत आ जाती हैं। संवेदना की स्पंदनशीलता अगर केवल इन्द्रियानुभव तक सीमित कर दे तो अप्रत्यक्ष तथा अमूर्त भाव बोध तो छूट जायेगा। जबकि साहित्य तो सूक्ष्म तथा अमूर्त को भी बोधगम्य और प्रत्यक्ष करने की भूमिका में होता है। अपनी संवेदनात्मक स्पंदनशीलता के कारण ही सर्जक किसी भी वस्तु या घटना से प्रभावित होकर सर्जना करता है तथा पाठक भी अपनी संवेदनात्मक अनुभूतियों के कारण ही उससे तादात्म्य स्थापित कर पाता है। कह सकते हैं कि साहित्य की सारी की सारी सार्थकता उसके सम्प्रेशणीयता पर ही निर्भर करती है जो संवेदना की धरा पर घटित होता है। जब–जब साहित्य की सार्थकता और आवश्यकता तथा साहित्यकार की भूमिका जैसे गुढ़ विषयों पर विचार किया गया है तो निष्पत्ति यही रही है कि साहित्य जीवन को आलोकित करता है, मनुष्य में बोध जगाता है इस प्रकार जीवन जीने की कला सीखाता है। साहित्य कवि या लेखक का व्यक्तिगत आलाप नहीं है। जब तक उसकी सर्जनात्मकता में तत्कालीन संवेदना का सम्वहन नहीं होता कोई भी कृति साहित्य की श्रेणी में नहीं गिनी जा सकती है। निश्चित तौर पर कोई व्यक्ति कवि या लेखक होने से पहले मनुष्य है किन्तु कवि होने की भूमिका में तो उस पर दोहरा दायित्व आ जाता है। इस प्रकार उसकी जिम्मेदारी स्व के साथ समय तथा समाज के प्रति भी बनती है। अज्ञेय की कविता 'कवि, हुआ क्या फिर' की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं जो इसी दायित्वबोध और प्रतिबद्धता को व्यक्त करती है।

''कवि, हृदय को लग गयी है ठेस? धरा में हल चलेगा!
मगर तुम तो गरेबाँ टोट कर देखो
कि क्या वह लोक के कल्याण का भी बीज तुम में है?''[7]

जीवन में बड़े बदलावों के मूल कारणों में साहित्य का योग है। यहाँ तक देखा जा सकता है कि विश्व की लगभग सभी बड़ी क्रांतियों में साहित्य की उल्लेखनीय भूमिका है। साहित्य के इतने प्रभावी होने का मूल कारण इसमें संचरित मानवीय संवेदनशीलता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि साहित्य की यात्रा मानवीय संवेदना की यात्रा है। प्रत्येक रचनाकार में एक सजग दृष्टि होती है; वह जीवन और जगत को अपनी दृष्टि से देखता है, बल्कि कह सकते हैं कि न केवल देखता है अपितु उससे जुड़ता है, उद्वेलित और संचालित भी होता है। निश्चित तौर पर यह जुड़ाव चेतना के स्तर पर ही सम्भव होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि लेखक की चेतना जिस परिस्थिति के गुण या भाव को ग्रहण करती है उसी से उसकी संवेदना निर्मित होती है और वही उसकी रचना का मूल तत्त्व होता है जिससे पुनः पाठक अपनी चेतना के साथ जुड़ता है और उसके संवेदनशील तत्त्वों से एकाकार करता है। इस प्रकार साहित्य संवेदना की वह यात्रा है, जो प्रथमतः लेखक की अनुभूति होती है और पुनः पाठक की। इसी परस्पता के फलस्वरूप प्रत्येक कृति का रूप पाठक की संवेदनाओं के आधार पर परिवर्तित होता है। कोई भी कृति सभी पाठकों के समक्ष एक सी नहीं होती या यह भी कह सकते हैं कि वही नहीं होती तो केवल लेखक ने अभिव्यक्त किया है। इसी स्पंदनशीलता और रूचि वैभिन्य के कारण हम देख सकते हैं कि कई बार पाठक की दृष्टि उस कृति विशेष में वह भी ढूँढ लेती है, जो लेखक का उस कृति की सर्जना के समय लक्ष्य नहीं होता। इसी स्पंदनशील यात्रा के फलस्वरूप कालजीवी संदर्भ कालजयी कृति के रूप में भी प्रतिष्ठित होती है। तभी तो यह स्वीकार किया जाता है कि 'रचना अपना अंत स्वयं ढूँढ लेती है।' कह सकते हैं कि किसी भी कृति के आधार तत्त्वों में संवेदना का विशिष्ट महत्त्व है क्योंकि यह उस कृति विशेष की उत्पत्ति और प्रभाव से सम्बन्धित है। उत्पत्ति और प्रभाव की इसी गुढ़ता के कारण आधुनिक समय में यह कहने की आवश्यकता है कि ''रचना केवल अभिव्यक्ति नहीं सम्प्रेषण है।''[8] ऐसा इसलिए भी कि पाठक भी चेतना सम्पन्न प्राणी है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि संवेदना मम से ममेतर के सम्बन्धों की कड़ी है। ''संवेदना यह यन्त्र है कि जिसके सहारे जीव–व्यष्टि अपने से इतर सब–कुछ से सम्बन्ध जोड़ती है – वह सम्बन्ध एक साथ ही एकता का भी है और भिन्नता का भी, क्योंकि उसके सहारे जहाँ जीव–व्यष्टि अपने से इतर जगत् को पहचानती है वहाँ उससे अपने को अलग भी करती है।''[9] और जब हम मानवीय संवेदना की बात करते हैं तो जरूर उसकी व्यापकता का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। एक मनुष्य के रूप में संवेदनशीलता के स्तर पर हम केवल दूसरे जीवों या प्राणियों तथा जड़ परिस्थितियों के क्रिया या प्रतिक्रया ही तक सीमित नहीं रह जाते बल्कि उन प्रतिक्रियाओं का मूल्यांकन भी करते हैं। इसी कारण से तमाम जैविक समताओं के बावजूद हम पाते हैं कि मनुष्य से इतर सभी जीव स्वयं को परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए क्रियाशील है जबकि मनुष्य इसके साथ ही परिस्थितियों को भी अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा में है। अतः उसकी (मनुष्य) की संवेदना का फलक निरन्तर विस्तृत होता रहता है। साहित्य अपने आप में इसी विस्तृत होते फलक की वाणी है। ''वास्तव में जहाँ तक साहित्य या किसी भी कला का प्रश्न है, संवदेना से हमारा अभिप्राय निरी ऐन्द्रिय चेतना से बिल्कुल भिन्न कुछ होता है। गर्म और ठंडा, उजला और अँधेरा, सादा और रंगीन, खट्टा और मीठा, नरम और कठोर, कर्कश और मधुर, यह सब भी इन्द्रिय–संवेद्य है और संवेदना का यह स्तर नैतिकता से परे है। यह कह लीजिए कि यह उसका जैविक स्तर है, मानवीय स्तर नहीं। यह कोटि की संवेदना जीव मात्र में होती है और मानव में भी उसके जीव होने के नाते ही। किन्तु जो संवेदना उसके नैतिक बोध के साथ गुँथी हुई है, वह दूसरे स्तर की है। वह अनन्य रूप से मानव की है और उसी के कारण जीवों में मानव अद्वितीय है।''[10] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि मानवीय संवदेना में निरी संवदेना के साथ अनिवार्य नैतिकता भी जुड़ जाती है जिससे न केवल उसकी संवेदना संचालित होती है, बल्कि नियंत्रित भी होती है। सामान्यतया जिसे हम साहित्य में लोक कल्याण की भावना के रूप प्रस्फुटित होते हुए पाते हैं। इसी अन्तर्गथन से साहित्य में वर्णित संवेदना मानवीय स्तर की संवेदना होती है।

वर्तमान संदर्भ में साहित्य की कसौटी अर्थहीन होते हुए मानव जीवन को नये अर्थ–संदर्भों से जोड़ने की योग्यता के आधार पर भी करने की आवश्यकता के साहित्य अध्येताओं ने जरूरी बताया है। बहुविधि विकास यात्रा पर उन्मुख मनुष्य का जीवन निरन्तर

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

नयी अर्थहीनता के बोध से घिरता जा रहा है जो मनुष्य की प्रकृति के विपरीत तथा भविष्य के लिए चिंता का विषय है। "अर्थहीनता मानवीय नियति नहीं, वरन् अर्थ का सृजन मानवीय नियति है। जैविक धरातल की सृष्टि प्राणी मात्र में समान है। इस जैविक सृष्टि के अन्तर्गत संवेदनात्मक अर्थ का सृजन और संचरण मानवीय जीवन की विशिष्टता, इसलिए चरम मूल्य और दायित्व है। साहित्य इस सार्थकता की खोज का प्रमुख माध्यम रहा है और अब भी है, क्योंकि धर्म, दर्शन अथवा विज्ञान की तुलना में उसकी प्रकृति और उसकी भाषा अधिक संपृक्त, अधिक मानवीय और इसीलिए अधिक सर्जनात्मक है।"[11] इस प्रकार साहित्य मनुष्य को समय संदर्भों की संवेदना से जोड़ता है। मानव जीवन की सार्थकता का बोध कराना साहित्य का मुख्य दायित्व है।

एक चिंतनशील प्राणी के रूप में मनुष्य अपने जीवन की विकास यात्रा का विश्लेषण करता रहता है। वैश्विक परस्परता, विज्ञान एवं तकनीकी के विकास के साथ मनुष्य का जीवन भी सदैव परिवर्तन की दहलीज पर खड़ा होता है। इस प्रक्रिया में वह परम्परागत जीवन तथा मूल्यों की अर्थहीनता का विरोध करता है, तो साथ ही उसकी सार्थकता के तत्त्वों को प्रतिष्ठित करने के अपने दायित्व का निर्वहन भी करता है, जो मनुष्य की जीवंतता का लक्षण है। इसी प्रक्रिया में वह नयी परिस्थितियों के सापेक्ष नये अर्थ का सृजन भी करता है। अतः "किसी भी कृति की वस्तु अनिवार्यता मानवीय वस्तु होती है। काव्य पेड़ पर या पहाड़ पर भी हो सकता है, पर पेड़ या पहाड़ उस के विषय होंगे, वस्तु नही, वस्तु जो भी होगी, मानवीय ही होगी। क्योंकि वह विषय के साथ कवि रागात्मक सम्बन्ध का प्रतिबिम्ब होगी – एक संवेदना या चेतना की अपने से इतर के साथ परस्पर प्रक्रिया से उद्भुत वस्तु। इसलिए वस्तु की परीक्षा करते समय कृतिकार के मानस की परीक्षा भी आवश्यकता होती है तो काव्य–विवेचन में विषय का बहुत कम महत्व है, वस्तु का ही है, और वस्तु का महत्व भी इसलिए है कि वह वस्तु मानवीय है उसके सहारे हम कृतिकार के मन में पहुँचते हैं और उस की परख करते हैं कि कैसे वह वस्तु तक पहुँचा, कैसे उसे उस की संवेदना ने ग्रहण किया और कैसे बहुजन–संवेद्य या प्रेषणीय बनाया।"[12]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि साहित्य का केन्द्रीय तत्व मानव है। अपनी वस्तु अनिवार्यता तथा प्रेषणीय होने की प्रक्रिया में संवेदना का जो स्वर साहित्य में मुखरित होता है वह मानवीय संवेदना ही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुद्गल, चित्रा, बयार उनकी मुट्ठी में, 2006, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली–110002 पृ0सं0 63.
2. सारस्वत, डॉ0 मालती, शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, 2014, आलोक प्रकाशन, एफ0एफ0 प्लाजा कॉम्प्लेक्स, अमीनाबाद, लखनऊ, पृ0 380.
3. सारस्वत, डॉ0 मालती, शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, वही, पृ0 380 (द्वि0सं0)।
4. वही (द्वि0सं0)।
5. वही (द्वि0सं0)।
6. प्रसाद, डॉ0 राजेन्द्र, अज्ञेय कवि और काव्य, 2013, वाणी प्रकाषन, 4695, 21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली, पृ0 94.
7. पालीवाल, कृष्णदत्त, सं0 अज्ञेय रचनावली, खण्ड–1, 2019, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली, पृ0 294.
8. पालीवाल, कृष्णदत्त, सं0 – अज्ञेय रचनावली खण्ड–4, वही, पृ0 496.
9. पालीवाल, कृष्णदत्त, सं0– अज्ञेय रचनावली खण्ड–10, 2016, वही, पृ0 126.
10. वही, पृ0 127.
11. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, 2010, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, पृ0 194.
12. अज्ञेय, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, आत्मनेपद, 2010, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली, पृ0 123.

*****